

बालमुकुंद गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषा विवाद

अमित कुमार

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा भारत

सारांश

बालमुकुंद गुप्त प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। उनकी व्यंग्यपूर्ण शैली उनके लेखन को एक विशिष्ट आयाम प्रदान करती है। कविता और निबंध में उनका योगदान अविस्मरणीय है। गुप्तजी की बाल कविताएँ भी हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' उनकी सर्वाधिक चर्चित कृति है। वे 'भारत मित्र' अखबार के संपादक के रूप में भी जाने जाते हैं। भाषा के प्रति उनका दृष्टिकोण उन्हें अपने समकालीनों में विशिष्ट बनाता है। गुप्तजी हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाने के पक्षधर नहीं थे। वे भाषा को आम बोलचाल के शब्दों से समृद्ध करना चाहते थे। हिंदी का स्वरूप निर्धारित करने में उनका योगदान सर्वविदित है। बावजूद इसके अपने समय के प्रख्यात आलोचकों द्वारा उनकी उपेक्षा की गई। इस संदर्भ में रामचंद्र शुक्ल का नाम लिया जा सकता है। एक बार 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनमें विवाद होता है, जिसमें दोनों संपादक अपने-अपने लेखों के द्वारा मजबूती से अपना पक्ष रखते हैं। उनके इस विवाद में अन्य आलोचक भी हस्तक्षेप करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस प्रकरण में महावीर प्रसाद द्विवेदी के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। गुप्तजी लेकिन तर्क के साथ मोर्चे पर डटे रहते हैं।

मुख्य शब्द: भाषा, व्याकरण, बालमुकुंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अनस्थिरता आदि

प्रस्तावना

बालमुकुंद गुप्त निर्भीक एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी हैं। वे स्पष्टवक्ता हैं और डंके की चोट पर अपनी बात कहना जानते हैं। उनकी यही विशेषता उन्हें अपने समकालीनों से अलग करती है। 'भारतमित्र' जैसे पत्र के संपादक के रूप में बालमुकुंद की छवि पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत मायने रखती है। बालमुकुंद गुप्त की भाषा और दृष्टिकोण उनके लेखन के महत्त्व को स्थापित करता है। विभिन्न विधाओं में लिखकर उनके भीतर का रचनाकार कई मोर्चे संभालता है। उनके लेखों में हमें गंभीरता के साथ-साथ व्यंग्य भी देखने को मिलता है तो बाल कविताओं में उतनी ही संवेदनाएं। बालकों के मनोविज्ञान को वे भली-भांति समझते हैं और उनकी रुचि के अनुसार लिखते हैं।

बालमुकुंद गुप्त की प्रतिष्ठा 'शिवशम्भु के चिट्ठे' से अधिक है, लेकिन वे कवि भी उतने ही उत्कृष्ट हैं। उनकी कविताएँ हमें लोकजीवन के विभिन्न आयामों से जोड़ती हैं। शब्दों के बरतने के प्रति गुप्तजी बहुत सजग थे। खड़ी बोली हिंदी के गद्य निर्माण में उनका योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। भाषा के प्रति उनकी जवाबदेही इसी से देखी जा सकती है कि एक बार किसी शब्द के प्रयोग को लेकर उनका विवाद हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी से हो गया। हुआ यह था कि द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका में भाषा को शुद्ध करने की मंशा से 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक से एक लेख लिखा था जिसमें व्याकरण संबंधी कई भूलें उनके उस लेख में छूट गई थीं। बालमुकुंद गुप्त यहीं पर द्विवेदी जी को पकड़ लेते हैं और उसका जवाब देने के लिए वे 'भारतमित्र' में कई किस्तें

लिखते हैं। अपने ही अंदाज में वे द्विवेदीजी से कहते हैं, "इस समय कृपा करके इतना बताते जाइए कि अनस्थिरता का क्या अर्थ है? स्थिरता और अस्थिरता के बीच में यह अनस्थिरता कहाँ से पैदा हो गई?"¹ द्विवेदीजी 'अनस्थिरता' पर डटे रहते हैं। वे 'भाषा और व्याकरण' वाले लेख के नवंबर 1905 तथा फरवरी 1906 में प्रकाशित भागों में इस शब्द का कई बार और जानबूझकर प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। 'स्थिरता', 'अस्थिरता' और 'अनस्थिरता' शब्दों के अर्थ वे कुछ इस तरह से समझाते हैं, "भाषा की परिवर्तनशीलता के विषय में 'अस्थिरता' की जगह 'अनस्थिरता' शब्द लिखना अनुचित नहीं। अस्थिरता शब्द केवल स्थिरता के प्रतिकूल अर्थ का बोधक है। जो स्थिर नहीं है वह अस्थिर है। परंतु जिसमें अतिशय अस्थिरता है, जिसमें अस्थिरता की मात्रा अत्यंत अधिक है, उसके लिए अनस्थिरता ही का प्रयोग हम अच्छा समझते हैं।"²

दोनों संपादक एक-दूसरे का जवाब देने के लिए छद्म नामों का सहारा लेते हैं। द्विवेदी जी का दोष यह होता है कि वे अपनी किसी भी गलती को स्वीकार नहीं करते। बालमुकुंद गुप्त इस प्रकरण में कहते भी हैं, "यदि द्विवेदी जी यह समझते हों कि जो कुछ वह लिखते हैं, वह ठीक है, उसमें किसी हुज्जत की जगह नहीं, तो समझ लें कि आत्माराम ने जो कुछ कहा, वह व्यर्थ है। उसको लेकर वह और उनके मित्र नाराज क्यों हों? और यदि वह समझें कि दूसरे लोगों को भी उनकी कही बात पर कुछ कहने का अधिकार है तो आत्माराम की बातों में उन्हें जो अच्छी मालूम हों, उन पर ध्यान दें। आत्माराम को उत्तर देने में उनकी शान न घटती हो, तो कुछ उत्तर दें।"³

बालमुकुंद गुप्त तथ्य के साथ बात करते हैं। वे द्विवेदीजी द्वारा प्रयोग में लाए गए शब्दों को व्याकरण की दृष्टि से देखते हैं और उस पर टिप्पणी करते हैं। गुप्तजी अपने लिखे की आलोचना को बुरा नहीं मानते और न ही वे उससे दुखी होते। वे तो स्वयं आलोचना को एक जोखिम भरा कार्य मानते हैं। वे कहते भी हैं, “आलोचना की रीति अभी हिंदी में भली-भांति जारी नहीं हुई है और लोग उसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठीक समझे हैं। इससे बहुत लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं और बहुतों को वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदान में कदम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना होते देखकर वही तुर्शरू हो जाते हैं। इससे हिंदी में आलोचना करना भिड़ के छते को छेड़ लेना है। छेड़ने वाले को चाहिए कि बहुत सी भिड़ों के डंक सहने के लिए प्रस्तुत रहे।”⁴

आश्चर्य की बात यह है कि द्विवेदी जी औरों को व्याकरण संबंधी सलाह देते हुए स्वयं कई ऐसी गलतियाँ कर जाते हैं जो व्याकरण के अनुसार सही नहीं होतीं। बालमुकुंद गुप्त द्विवेदी जी के भाषा और व्याकरण संबंधी लेख, टिप्पणियों को बहुत ध्यान से पढ़ते हैं और उन पर अपनी मारक टिप्पणी करते हैं। द्विवेदीजी को यह सब सहन नहीं होता। गलत होते हुए भी अपने लिखे पर वह डटे रहते हैं और उसे सही सिद्ध करने के लिए अपनी तरह के तर्क देते हैं। सरस्वती पत्रिका के नवंबर, 1905 के अंक में ‘भाषा और व्याकरण’ शीर्षक से लेख लिखने वाले द्विवेदी जी पहले ही पैराग्राफ में गलतियाँ कर जाते हैं, जो बालमुकुंद गुप्त की पारखी नजरों से बच नहीं पातीं। द्विवेदीजी अपने लेख की शुरूआत में ही लिखते हैं, “मन में जो भाव उदित होते हैं, वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं। मन की बातें प्रकट करने का प्रधान उपाय भाषा है। संकेतों, अर्थात् इशारों, से भी मन के भाव प्रकट किए जाते हैं; पर यह उपाय गौण है। इशारों से वह काम नहीं हो सकता, जो भाषा से होता है। इससे, मनोभाव प्रकट करने का प्रधान साधन भाषा ही है। जिस तरह मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और लता आदि की उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश होता है, उसी तरह भाषा का भी होता है। भाषाएँ भी उत्पन्न होकर विनाश पाती हैं और कालांतर में विनष्ट हो जाती हैं। मनुष्य और पशु-पक्षी आदि की उम्र देश, काल, अवस्था और शरीर-बंधन के अनुसार जुदा-जुदा होती है। भाषाओं की भी उम्र, अनेक कारणों से जुदा-जुदा होती है। कोई भाषा सौ वर्ष, कोई दो सौ वर्ष, कोई पाँच सौ वर्ष और कोई हजारों वर्ष तक जीती रहती है। आहार और विहार के परिमाण को परिमित रखने और आरोग्य-शास्त्र के नियमों का उल्लंघन न करने से आदमी अधिक समय तक जीता रहता है; अल्पायु नहीं होता। इसी तरह व्याकरण के नियमों से भाषा के कलेवर को दृढ़ करने से उसका भी आयुर्बल बढ़ जाता है।”⁵

गुप्तजी लेख की प्रारंभिक पंक्तियों से ही अपना पक्ष रखना शुरू करते हैं। द्विवेदी जी की ‘मन में जो भाव उदित होते हैं, वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं।’ पंक्तियों के जवाब में वे लिखते हैं, “क्यों जनाब, भाषा की सहायता से मन के भाव दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं या भाषा से ? आप टांगों की सहायता से चलते हैं या टांगों से ? आँखों की सहायता से देखते हैं या आँखों से ? कानों की सहायता से सुनते हैं या खास कानों ही से ? लेखनी की सहायता से लिखते हैं

या लेखनी से ही लिखने लग जाते हैं ? जो अपनी बोली जानते हैं, वह इस वाक्य को इस तरह लिखते : ‘मन में जो भाव उठते हैं, वह भाषा से दूसरों को सुना दिए जाते हैं।’ अथवा ‘मन की बात बोलकर दूसरों को सुना दी जाती है।’ द्विवेदीजी तरजमे से भाषा तैयार करते हैं, उसमें असलियत कहाँ ? भाषापन कहाँ ? तिसपर भी सबको सिखाने के लिए कमर कसकर खड़े हो गए हैं।”⁶

द्विवेदीजी के लिखे को कई जगह से उठाकर गुप्तजी उस पर अपनी टिप्पणी करते हैं। आत्माराम नाम से लिखे जाने वाले लेख उस समय हिंदी की व्युत्पत्ति और प्रयोग की दिशा तय कर रहे थे। गुप्तजी द्विवेदीजी के लिखे पर लिख रहे थे, न कि द्विवेदीजी पर। द्विवेदीजी बल्कि आत्माराम को भारतमित्र संपादक मानते हुए गुप्तजी पर टिप्पणियाँ करते हैं। बालमुकुंद गुप्त द्विवेदीजी और रामभजराम की किसी चिट्ठी का जिक्र करते हुए लिखते हैं, “जिस समय रामभजराम और द्विवेदीजी की एक निज की चिट्ठी भारतमित्र-संपादक के नाम आई उसका भाव यह था कि पंडित श्रीधर पाठक कहते हैं कि ‘खिलौना’⁷ आपने बनाया है। यदि मैं यह जानता कि वह आपका बनाया हुआ है, तो उसकी कभी वैसी आलोचना न करता। पर आपने यह बात मुझे न बताकर मेरी आलोचना की कड़ी आलोचना लिखी, यह मित्रता के व्यवहार से दूर बात है। यहाँ से उत्तर में लिखा गया, कि आपकी कृपा का धन्यवाद है। पर हम इस बात से सहमत नहीं हो सकते कि मित्रों की पुस्तकों की आलोचना और प्रकार हो और जो मित्र नहीं हैं, उनकी और प्रकार...।”⁸

गुप्तजी हिंदी के प्रारंभिक स्वरूप में इतनी त्रुटियाँ नहीं देखते। वे मानते हैं कि भाषा को विकसित रूप तक पहुँचाने के लिए लेखकों द्वारा अलग-अलग समय में किए गए प्रयास उतना ही महत्त्व रखते हैं। द्विवेदीजी विज्ञापनों की भाषा तक से कमियाँ निकालते हुए लिखते हैं। प्रैस की भूलों को भी वे लेखक की भूलें मानने लगते हैं। इसके लिए बालमुकुंद गुप्त उनको टोकते भी हैं कि द्विवेदीजी विज्ञापनों पर अधिक लिखते हैं, पुस्तकों पर कम। गुप्तजी यह मानते हैं कि बीस साल पहले बोली जाने वाली हिंदी में अब अंतर होना स्वाभाविक है। यह भाषा का बदलता हुआ स्वरूप है जो किसी भी भाषा के परिष्कृत एवं विकसित रूप के लिए अति आवश्यक है। वे इसे एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट करते हैं, “एक उर्दू कवि कहता है :

वह सूरतें इलाही किस देश वस्तियाँ हैं,
अब देखने को जिनके, आँखें तरसतियाँ हैं।

तब यह बोलचाल शुद्ध थी, उत्तम समझी जाती थी। अब लोग उसकी पैरवी नहीं करते। पर उसे गलत नहीं बताते। उस समय के बोलनेवालों पर ताने नहीं झाड़ते। क्योंकि पुराने लेखक इस समय के लोगों के पथ प्रदर्शक Pineer थे। उनकी मेहनत की तरफ ध्यान करना चाहिए। वह पथ परिष्कार न करते तो इस समय के लोग चलते किधर से। जिसने पहले रेल का इंजन बनाया, उस भदे इंजन को लोग बड़ी प्रीति की दृष्टि से देखेंगे। आजकल के उत्तम इंजनों को देखकर यदि कोई उस आदमी के उस आदि इंजन की बनावट पर हँसे तो उसे द्विवेदीजी जो कुछ

कहना चाहें वह कृपा करके अपने ही को कह लें। क्योंकि आपकी उसी आदमी की सी गति है।”⁹

द्विवेदीजी औरों की अशुद्धियों (भले ही वे हों भी न) पर लिखते हैं और गुप्तजी द्विवेदी जी की अशुद्धियों पर। दो संपादकों के बीच का यह संवाद कई किस्तों में जाकर पूरा होता है। दोनों के बीच के इस संवाद के पक्षकार कई लोग अपने-अपने मत की पुष्टि करते हैं और एक के लिखे को सही ठहराते हैं। द्विवेदीजी बोलने की भाषा के लिए व्याकरण के नियमों की जरूरत नहीं समझते तो दूसरी ओर वे लिखते हुए भी व्याकरण संबंधी गलतियाँ कर जाते हैं। उदाहरण के तौर पर वे लिखते हैं, “इस कारण बोलने की भाषा को व्याकरण की शृंखला से बांधने की जरूरत नहीं। उसे यथेच्छ संचरण करने देना चाहिए। और, उसका व्याकरण बन भी नहीं सकता, क्योंकि जो भाषा परिवर्तनशील है, उसका व्याकरण बनाना, कोई कितनी दफा ? जो प्रयोग या जो वाक्य, या जो मुहाविरा आजकल व्याकरणसिद्ध और सर्वसम्मत है, वही कुछ काल बाद निषिद्ध माना जाएगा। तो क्या उस समय फिर एक नया व्याकरण बनैगा ? नहीं, यदि इस तरह नये-नये व्याकरण बनते रहेंगे तो अनंत व्याकरणों की जरूरत होगी।”¹⁰ गुप्तजी महावीर प्रसाद द्विवेदीके इस पैराग्राफ की अपने लेख ‘भाषा की अनस्थिरता (3)’ में साथ-साथ आलोचना करते हैं। वे द्विवेदीजी द्वारा प्रयोग किए गए ‘बनाना’, ‘दफा’ और ‘मुहाविरा’ शब्दों के प्रयोग को चिह्नित करते हुए कहते हैं, “वाह ! वैगा और दफा के दोनों पलड़े भी कैसे बराबर हैं !”, “अजी महाराज ! मुहाविरा व्याकरणसिद्ध कैसे होता है। किसी से इस कमबख्त शब्द के मानी तो पूछ लीजिए”, “नहीं साहब नहीं बनैगा, आपकी दलील पत्थर की लकीर है। पर आप जैसे हिंदीदां को ‘तो’ और ‘तब’ का प्रयोग ठीक नहीं मालूम, यह कैसे गजब की बात है। आप इस तरह कहिये : ‘तब क्या फिर एक व्याकरण बनैगा ?’ ऐसा लिखने में वाक्य गठ गया। आपका ‘तो’ ‘उस समय’ को साथ लेकर रफूचक्कर हुआ। क्योंकि ‘तब’ कहने में ही ‘तो उस समय’ आ गया। आप सच जानिए कि अच्छी भाषा लिखने वाले वाक्य को छोटा करके लिखना, आपकी व्याकरणदानी की पाबंदी से भी कहीं बढ़कर समझते हैं।”¹¹

यह सही है कि द्विवेदीजी गुप्तजी जितने गंभीर नहीं हैं। द्विवेदी जी किसी विषय विशेष पर अधिक विचार करके लिखते हुए दिखाई नहीं देते। किसी भी विषय पर वे तुरत लिखना शुरू कर देते हैं और उसके लिए वैसे ही उदाहरणों को अपने तर्क की पुष्टि के लिए प्रस्तुत करते हैं। ऐसा लगता है जैसे द्विवेदीजी डंडे के बल पर यह दिखाना चाहते हैं कि वे जो कुछ कहते हैं, सोलह आने सही होता है। इस संबंध में यदि कोई उनसे अलग विचार रखता है तो वे उसे बिलकुल भी सही नहीं मानते। ‘अनस्थिरता’ शब्द को सही सिद्ध करने के लिए द्विवेदीजी अनेक तर्क जुटाते हैं, लेकिन कहीं भी यह नहीं कहते कि यह शब्द व्याकरण के अनुसार चलन में नहीं है। इसीलिए बालमुकुंद गुप्त द्विवेदी के लिखे पर अपने चुटीले अंदाज से टिप्पणी करते हैं।

‘भाषा और व्याकरण’ लेख को आधार बना लिखने वाले आत्माराम के संदर्भ में द्विवेदीजी कहते भी हैं कि आराम से आत्मा के कोटर में छिपे जिस समालोचक को सर्वसाधारण के सामने प्रकट होने में शर्म

लगती है, उसकी विकत्थनाओं का उत्तर वे इसलिए देना जरूरी नहीं समझते, क्योंकि उत्तर समालोचनाओं का दिया जाता है, प्रलापों का नहीं। द्विवेदीजी यह मानते हैं कि आत्माराम नाम के प्राणी में मसखरेपन और शुष्क वितंडावाद की मात्रा बहुत बढ़ी हुई है, इसलिए वे उसका विस्तृत उत्तर नहीं देना चाहते। वे लिखते हैं, “जिस काया में घुसकर हमारे शूर समालोचक बाण-वर्षा कर रहे हैं, उसकी शुरू ही से ‘सरस्वती’ पर नेक नज़र रही है। आक्रमण पर आक्रमण उस पर होते आए हैं। पर हमने कभी उनकी तरफ ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी। नहीं मालूम क्यों कुछ लोगों की आँख में ‘सरस्वती’ कांटे-सी चुभती है।”¹² बालमुकुंद गुप्त जबकि इसे सिरे से नकारते हैं। द्विवेदीजी द्वारा गुप्तजी की इस तरह की खींचतान की शुरूआत छह-एक साल पहले से बतायी जाती है। गुप्तजी लेकिन द्विवेदीजी को उनसे पुराने परिचय की याद दिलाते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदीजी बालमुकुंद गुप्त के संपादन में कई बार प्रकाशित हुए हैं। गुप्तजी अपने ‘नेक नज़र और नेकनीयती’ शीर्षक से लिखी पहली, दूसरी और तीसरी कड़ी में द्विवेदीजी की उन सब रचनाओं के बारे में बताते हैं, जो किसी न किसी रूप में बालमुकुंद गुप्तजी को उन्होंने तब प्रेषित की थी, जब गुप्तजी ‘हिन्दोस्थान’, ‘हिंदी बंगवासी’ और ‘भारतमित्र’ के संपादन से जुड़े थे। गुप्तजी द्विवेदीजी की रचनाओं की स्तरीयता को जांचते थे और उत्कृष्ट होने पर ही प्रकाशित करते थे। 1889 से 1901 ई। तक गुप्तजी के संपादन में कई बार प्रकाशित होने वाले द्विवेदीजी 1903 ई। में ‘सरस्वती’ पत्रिका के संपादन का जिम्मा संभालते हैं। गुप्तजी ने द्विवेदीजी की कुछ रचनाएँ भी लौटायी थीं। ‘नेक नज़र और नेकनीयती (3)’ में गुप्तजी लिखते हैं, “...एक-आध बार हमने उनके भेजे कुछ लेख विशेष कारणों से नहीं छापे। आपका एक लेख था-‘किसने किससे होली खेली’। उसमें लिखा था-‘बूरो ने अंगरेजों से होली खेली, अमुक ने अमुक से होली खेली’। हमने लिखा कि यह लेख आपकी शान के लायक नहीं हुआ। आपने वापिस मंगवा लिया, हमने भेज दिया। हम समझे थे कि ‘जो कुछ लिखे छपाये सिद्ध, और नहीं नाम ही प्रसिद्ध’ से द्विवेदीजी को नफ़रत है। उस लेख को आप फाड़कर फेंक देंगे। पर हमने कई दिन बाद एक हिंदी अखबार में (शायद ‘हिन्दोस्थान’ में) देखा कि वह लेख छप गया है।”¹³

बालमुकुंद गुप्त यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं करते, “जो व्यक्ति हिंदी का सुधार चाहता है, उसमें एक अच्छा व्याकरण देखना चाहता है, उसके हृदय की यह लम्बाई-चौड़ाई देखने के योग्य है ! अपने अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध बताने का जिन लोगों को इतना आग्रह है, वह व्याकरण का सुधार करने चले हैं ! आश्चर्य है कि आप अपना एक शब्द न बदलेंगे और दुनिया आपके कहने से अपनी भाषा बदल देगी ! आपका यही मोह छुड़ाने के लिए आत्माराम ने आलोचना की थी।”¹⁴

एक-दूसरे को जवाब देने का अंदाज दोनों का निराला है। गुप्तजी द्विवेदीजी को जब किनारे के कीचड़ में ही कुछ ढूँढ़ने वाला पक्षी कहते हैं तो द्विवेदीजी उसके उत्तर में यह लिखते हैं, “समालोचना-सरोवर के हंस, हमारे समालोचक महाशय ने हमारी तुलना ‘एक विशेष प्रकार के जल-पक्षी’ से की है। इस पक्षी को ‘किनारे के कीचड़ ही में सब मिल

जाता है। थैंक यू, जलपक्षियों के परीक्षक और जुबाँदानी का कीचड़ उड़ाने वाले वीर! आपने कभी उस जलचर को भी देखा है जो भय के मारे अपने हाथ, पैर, सिर और आत्मा तक को अपने शरीर के कोटर में छिपाकर पानी में गोता लगा जाता है? इस दफे हम 'इधर-उधर के विज्ञापन आदि से' कुछ न चुनकर हरिश्चंद्र के मुद्राराक्षस नाटक की इबारत में अनस्थिरता दिखलाने की कोशिश करते हैं। आप इस भयत्रस्त जलचर की भांति गोता लगाकर देखिये कि हमारे नमूने किनारे के हैं या कुछ दूर के।¹⁵

बालमुकुंद गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदीके इस संवाद में द्विवेदीजी का पक्ष कई लोग लेते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भी हमें यह पक्षपात देखने को मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल गुप्तजी के बारे में "वे अपने समय के सबसे अनुभवी और कुशल संपादक थे" कहकर तुरंत लिखते हैं, "ये बहुत ही चलते पुरजे और विनोदशील लेखक थे, अतः कभी-कभी छेड़छाड़ भी कर बैठते थे। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदीने जब 'सरस्वती' (भाग 6, संख्या 11) के अपने प्रसिद्ध 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक लेख से 'अनस्थिरता' शब्द का प्रयोग कर दिया, तब इन्हें छेड़छाड़ का मौका मिल गया और इन्होंने 'आत्मराम' के नाम से द्विवेदीजी के कुछ प्रयोगों की आलोचना करते हुए लेखमाला निकाली जिसमें चुहलबाजी का पुट पूरा था। द्विवेदीजी ऐसे 16 गंभीर प्रकृति के व्यक्ति को भी युक्तिपूर्ण उत्तर के अतिरिक्त इनकी विनोदपूर्ण विगर्हणा के लिए 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' शीर्षक देकर बहुत फबता हुआ आल्हा 'कल्लू अल्हड़त' के नाम से लिखना पड़ा।¹⁷

भाषा के दायरे और उसकी शब्द-समृद्धि के बारे में भी दोनों के सोचने के ढंग में दिन-रात का अंतर है। द्विवेदीजी हिंदी में संस्कृत और प्राकृत के शब्दों को मिश्रित किए जाने की वकालत करते हैं। वे इसे ही भाषा की सजीवता मानते हैं और हिंदी के बहुरूपी चरित्र को हिकारत की दृष्टि से देखते हैं। खड़ी बोली में जबकि अनेक भाषाओं के शब्दों की आवाजाही है। शब्दों को खुले मन से स्वीकारने का यह लचीलापन ही किसी भाषा के स्वाद और उसकी गति को बढ़ाता है। द्विवेदीजी के शब्दों में, "हिंदी में जो सजीवता है वह उसे संस्कृत और प्राकृत से मिली है, अरबी फ़ारसी से नहीं। पर जिस हिंदी के टुकड़े खाकर उर्दू जिंदा है उसी हिंदी को अब उर्दू के द्वार पर भीख मांगने, उसके सेवकों की बोली की नकल करने देहली-आगरे जाना होगा ! देखें, इन जुबाँदानों की बदौलत उसकी क्या-क्या गति होती है।"¹⁸ जबकि गुप्तजी खुले मन से अरबी, फ़ारसी के शब्दों के आगमन को स्वीकारते हैं। हिंदी को वे संकीर्णता के दायरे में कैद करने के पक्ष में नहीं हैं। धर्म के आधार पर वे भाषाओं के प्रयोग करने वालों पर लिखते भी हैं, "...उर्दू से उस समय कुछ शिक्षित हिंदू घबराने लगे थे और समझने लगे थे कि फ़ारसी, अरबी शब्दों के बहुत मिल जाने से हिंदी हिंदी न रही, कुछ और ही हो गई, हिंदुओं के काम वह नहीं आ सकती। ईश्वर की इच्छा थी कि हिंदी की रक्षा हो, इसी से यह विचार कुछ शिक्षित हिंदुओं के हृदय में उसने अंकुरित किया। गिरती हुई हिंदी को उठाने के लिए उसकी प्रेरणा से स्वर्गीय बाबू हरिश्चंद्र का जन्म हुआ।"¹⁹ द्विवेदीजी किसी भाषा विशेष के व्याकरण की संस्तुति भी एकपक्षीय

दृष्टिकोण से करते हुए दिखाई देते हैं। हिंदी के लिए वे जब कहते हैं, "हिंदी के शब्द-विचार में, हमारी समझ में, यथासंभव संस्कृत व्याकरण से सहायता लेनी चाहिए। संस्कृत-व्याकरण के समान अच्छा और कोई व्याकरण दुनिया में नहीं। उसे छोड़कर जो लोग उर्दू और फ़ारसी के व्याकरण का आश्रय लेते हैं, वे मानो घर की कामधेनु के दूध का अनादर करके आक का दूध निकालने दौड़ते हैं।"²⁰

कहा जा सकता है कि बालमुकुंद गुप्त हिंदी भाषा और उसके व्याकरण की कहीं भी उपेक्षा करते हुए नहीं दिखते। वे भाषा की व्युत्पत्ति और उसके प्रयोग में किसी संकुचित तर्क का सहारा नहीं लेते। भाषा को वे केवल धर्म के चश्मे से देखना पसंद नहीं करते। भाषा में वे देहाती शब्दों के प्रयोग को न केवल जरूरी व सही मानते हैं, बल्कि उसका प्रयोग अपने लेखन में भी करते हुए दिखाई देते हैं। लिखते समय चुटीलापन उनके लेखन की गंभीरता को कम नहीं करता, अपितु चुटीलेपन का यह अंदाज उनकी लेखन-शैली की एक मुख्य विशेषता के रूप में उभरकर हमारे सामने आता है। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' इसका सशक्त उदाहरण है।

संदर्भ सूची

1. गुप्त, बालमुकुंद; बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खंड-2); सं. के.सी. यादव; हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, 76, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगाँव; संस्करण : 2013; पृ. 110.
2. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद; आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबंध; सं. विनोद तिवारी; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001 (उ.प्र.); संस्करण : 2016; पृष्ठ 146.
3. गुप्त, बालमुकुंद; बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खंड-2); पूर्वोक्त; पृ. 97.
4. वही; पृ. 93.
5. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद; आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबंध; पूर्वोक्त; पृष्ठ 127.
6. गुप्त, बालमुकुंद; बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खंड-2); पूर्वोक्त; पृ. 101-102.
7. गुप्तजी द्वारा रसिकलाल दत्त नाम से लिखी बच्चों की पुस्तक
8. गुप्त, बालमुकुंद; बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खंड-2); पूर्वोक्त; पृ. 182-183.
9. वही; पृ. 131-132.
10. वही; पृ. 111.
11. वही।
12. वही; पृ. 154.
13. वही; पृ. 185.
14. वही; पृ. 199.
15. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद; आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबंध; पूर्वोक्त; पृ. 163-164.
16. ऐसे की जगह जैसे होना चाहिए। हो सकता है यह प्रिंट की कोई भूल हो।

17. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; कमल प्रकाशन, 1700, कूचा दखनी राय, नियर पटौदी हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : नवीनतम; पृ. 344.
18. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद; आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबंध; पूर्वोक्त; पृ. 166.
19. गुप्त, बालमुकुंद; बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खंड-2); पूर्वोक्त; पृ. 48.
20. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद; आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के श्रेष्ठ निबंध; पूर्वोक्त; पृ. 153.